SUSHANT UNIVERSITY ORGANIZED INTERNATIONAL CONFERENCE ON
"ADVANCES IN MULTIDISCIPLINARY RESEARCH AND INNVOATION" ICAMRI-2023
ON 28-29TH OCTOBER 2023
INTERNATIONAL ADVANCE JOURNAL OF ENGINEERING, SCIENCE AND MANAGEMENT (IAJESM)
July-December 2023, Submitted in October 2023, iajesm2014@gmail.com, ISSN -2393-8048
Multidisciplinary Indexed/Peer Reviewed Journal. SJIF Impact Factor 2023 =6.753

# आधुनिक हिंदी कविता में व्यक्त प्रेमानुभूति

शोधार्थी पीएच.डी.– कांता देवी हिंदी विभाग श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़ ,राजस्थान–335801

## प्रस्तावना

'प्रेमन' भाववाचक संज्ञा शब्द है। यह शब्द संस्कृत में नपुंसक लिंग तथा हिंदी में दोंनों लिंगों में प्रयुक्त होता है। प्रसिद्ध वाचस्पत्य कोष में इसकी व्युत्पत्ति 'प्रिय' शब्द से की गई है : यथा, ''प्रियस्य भावः इमनिच् प्रत्यय प्रादेशः।''[1] प्रियस्य भावः = प्रेमा (पुल्लिंग)। प्रिय 'प्र' प्रकृति तथा भावार्थक 'इमन्' प्रत्यय से 'प्रेमा' शब्द निष्पन्न हुआ। इसलिए 'प्रेमन' का अर्थ हुआ 'प्रियता', प्रिय का भाव या प्रिय होना।

'प्रेमन' शब्द की व्युत्पत्ति 'प्री' (अर्थात प्रसन्न करना, आनंद लेना या आनन्दित होना) धातु से मनिन् (मन्) प्रत्यय जोड़ कर भी हो सकती है। इस शब्द का लिंग नपुंसक होगा।

'प्रेम' शब्द की एक और व्युत्पत्ति व्याकरणानुसार हो सकती है। 'प्रीञ् प्रीती' धातु से उणादि सूत्र ''सर्व धातुभ्यः'' से मनिन् प्रत्यय करके 'प्रेम' शब्द निष्पन्न हुआ है।

इस युग में मानव–प्रेम एक नवीन महिमा से मंडित हुआ और वह जीवन की एक पवित्र निधि अथवा तत्व के रूप में स्वीकार किया गया।[2] भक्ति–जगत् में तो प्रेम एक पावन–कारी षक्ति के रूप में प्रतिश्ठित था ही किन्तु अब उसकी क्रांति–किरण से मानवीय मादन–प्रेम सम्बन्ध भी दमक उठे। लौकिक प्रेम की पवित्रता तथा महत्ता हिन्दी–काव्य में पहली बार दिखाई पड़ी। कवियों ने उज्जवल मानवीय प्रेम का अनेक प्रकार से गुण–गान करके उस में लोकोत्तर पावनता की प्रतिश्ठा की।

कविवर 'प्रसाद' ने प्रेम को मानव–जीवन की सर्वोच्च साधना के रूप में देखाः–

पथिक, प्रेम की राह अनोखी भूल भूल कर चलना है,
घनी छाँह है जो ऊपर तो नीचे काँटे बिछे हुये।
प्रेम–यज्ञ में स्वार्थ और कामना हवन करना होगा,
तब तुम, प्रियतम स्वर्ग बिहारी होने का फल पाओगे।
प्रेम पवित्र पदार्थ, न इसमें कहीं कपट की छाया हो,
इस का परिमित रूप नहीं जो व्यक्ति–मात्र में बना रहे।
क्योंकि यही प्रभु का स्वरूप है जहाँ कि सब को समता है,
इस पथ का उद्देष्य नहीं है श्रांत भवन में टिक रहना
किंतु पहुँचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं।[3]

पं0 श्रीधर पाठक भी रूखे ज्ञानियों की तरह प्रेम को आसार नहीं कहते। वे संसार को पूर्ण प्रेममय समझते हैं:–

प्रेममय है सारा संसार।
प्रेमहि का सारा प्रसार है, मत कह इसे असार।।[4]

प्रेम–रस में सराबोर कविवर सत्यनारायण 'कविरत्न' प्रेम की महिमा का यों बखान करते हैं –

मंजु मनोरम मधुर रस सरस सुठि रस कुसुमाकर।
प्रेम सबद अति अद्भुत अमल अलौकिक आखर।।
अति करकस अति कठिन लोह मन के सोउ दरसै।

---

[1] वाचस्पत्य कोष, पृ0 4540
[2] डा0 श्रीकृश्ण लाल : 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास', पृ0 64
[3] प्रेम पथिक, पृ0 16
[4] भारत–गीत, पृ0 68

सहजहि सुबरन होत प्रेम पारस के परसे।।
होत न सोभा कतहुँ नेह सौं सूनै उर की।
स्वीकृत हीइन सनद कबहुँ जो बिना मुहर की।।
निरत विचारन जोग रूचिर उपदेस यही उर।
परमेसुर मय प्रेम प्रेममय नित परमेसुर।।[5]

इसी प्रकार कविवर मैथिलीषरण गुप्त ने प्रेम को काम से सर्वथा भिन्न बता कर उसकी षुभ्रता तथा प्रणय–पथ की उच्चता प्रदर्षित की है–

चुप, चुप कामी, चुप, नाम न लो प्रेम का,
अबला रहूँ, मैं, किन्तु धर्म बलवन्त है।
तुम हो कृपाण पंथी, प्रणय पंथी नहीं,
प्रेमी तो पराजय भी भोगता है जय सी।
सच्चा योग उसका वियोग में ही होता है।
मर कि जिलाता वह, जीता नहीं मार के।।[6]

कवि प्रेम को मुक्ति से भी बड़ा मानता है। प्रेम से ही संसार–सागर पार होता है। उनकी 'यषोधरा' कहती है –

आओ, प्रिय, मन में भाव विभाव भरें हम,
डूबेंगे नहीं कदापि तरें न तरें हम।
कैवल्य काम भी काम, स्वधर्म धरें हम,
संसार हेतु षत वार सहर्श मरें हम।
तुम सुनो क्षेम से, प्रेम गीत मैं गाऊँ,
कह मुक्ति, भला, किस लिए तुझे मैं पाऊँ।[7]

गुप्त जी, प्रेम और मोह, आत्मा का विष्वास और मन का विद्रोह, वासना और सुधापूर्ण प्रीति में स्पश्ट अन्तर करते हैं।[8]

श्री सियारामषरण गुप्त प्रेम–तीर्थ में पवित्र होने के लिये मानव को सप्रेम निमंत्रित कर रहें हैं–

कलह प्रेम की मुर्ति, अरे ओ मानव भोले,
धरती के इस प्रेम–तीर्थ में पावन हो ले।[9]

कविकर पं0 रामनरेष त्रिपाठी तो फेफड़े की सारी षक्ति लगाकर और पूरा कण्ठ खोल कर प्रेम का गौरव–गान करते नहीं अघाते।

---

[5] हृदय–तरंग, प्रेम कली।
[6] सिद्धराज, पृ0 72–73
[7] 'यषोधरा', (1995), पृ0 151
[8] 'पंचवटी', 61
[9] 'मृण्मयी', पृ0 76